E-Learning material prepared by Dr. Dhananjay Vasudeo Dwivedi, Assistant Professor, Department of Sanskrit, Dr. Shyama Prasad Mukherjee University, Ranchi

श्रीशंकुक का अनुमितिवाद

डा० धनञ्जय वासुदेव द्विवेदी

सहायक प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,

डा० श्यामा प्रसाद मुखर्जी विश्वविद्यालय, राँची

श्रीशंकुक ने न्यायशास्त्र के मतानुसार रससूत्र-"विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद् रसनिष्पत्तिः" की व्याख्या की है। इन्होंने ने रस का सम्बन्ध सामाजिक के साथ इस प्रकार बताया है-'अनुकर्ता नट' कृत्रिम अनुभाव आदि को जब प्रदर्शित करता है, तब उसके द्वारा किए जाने वाले अनुभाव आदि उसके अभ्यासकौशल के बल पर उसमें वास्तविक से प्रतीत होते हैं। कृत्रिम होने पर भी वास्तविक से प्रतीयमान होने वाले अनुभाव आदि को देखकर दर्शक (सामाजिक) लोग उस (अनुकर्ता नट) में वस्तुतः विद्यमान न रहते हुए भी रस का अनुमान कर लेते हैं। और वे सामाजिक अपनी-अपनी वासना (संस्कार) के वशीभूत होकर उस अनुमीयमान रस का आस्वाद कर लेते रहते हैं। श्रीशंकुक के द्वारा की गई व्याख्या को काव्यप्रकाशकार कर रहे हैं-

"राम एवायम् अयमेव राम इति न रामोऽयमित्यौतरकालिके बाधे रामोऽयमिति राम स्याद्वा न वाऽयमिति रामसदृशोऽयमिति च सम्यङ्मिथ्यासंशयसादृश्यप्रतीतिभ्यो विलक्षणया चित्रतुरगादिन्यायेन रामोऽयमिति प्रतिपत्त्या ग्राह्ये नटे। काव्यानुसन्धानबलाच्छिक्षाभ्यासनिर्वर्त्तितस्वकार्यप्रकटनेन च नटेनैव प्रकाशितैः कारणकार्यसहकारिभिः कृत्रिमैरपि तथाऽनभिमन्यमानेर्विभावादिशब्दव्यपदेश्यैः 'संयोगाद्' गम्यगमकभावरूपाद् अनुमीयमानोऽपि वस्तुसौन्दर्यबलाद्रसनीयत्वेनान्यानुमीयमानविलक्षणः स्थायित्वेन सम्भाव्यमानो रत्यादिर्भावस्तत्रासन्नपि सामाजिकानां वासनया चर्व्यमाणो रस इति श्रीशंकुकः"।

अर्थात् क) 'यह राम ही है' अथवा 'यह ही राम है'-इस आकार की सम्यक् प्रतीति, ख) 'यह राम नहीं है'-इस तरह उत्तरकाल में बाधित होने वाली, 'यह राम है'-इस प्रकार की मिथ्या प्रतीति, ग) 'यह राम है या नहीं-इस प्रकार की संशयात्मक प्रतीति और घ) 'यह राम के समान है'-इस प्रकार की सादृश्य प्रतीति कराने वाले चार ज्ञान हैं। इन क) सम्यक् प्रतीति, ख) मिथ्या प्रतीति, ग) संशय प्रतीति तथा घ)

सादृश्य प्रतीतियों से भिन्न प्रकार की 'चित्रतुरगन्याय' से होने वाली पाँचवें प्रकार की प्रतीति से ग्राह्य जो नट, उसमें अनुमीयमान होने पर भी वस्तुसौन्दर्य के कारण तथा आस्वाद्य होने से अन्य अनुमीयमान वस्तुओं से विलक्षण पदार्थ का अपने संस्कार के बल पर जो आस्वाद किया जाता है, वही रस है। काव्यों के अनुसन्धान (अनुशीलन) के बल पर शिक्षा के अभ्यास से निष्पन्न हुए अपने अनुभाव आदि कार्य से नट के ही द्वारा किए जाने वाले, उनके कृत्रिम होने पर भी अकृत्रिम के समान (स्वाभाविक से) लगने वाले अर्थात् कृत्रिम न समझे जाने वाले, विभाव आदि शब्दों से बोले जाने वाले, कारण, कार्य और सहकारी कारणों के साथ 'संयोग' यानि 'गम्य-गमकभावरूप' सम्बन्ध के कारण चित्रतुरगन्याय की प्रतीति से पूर्वोक्त नट में अनुमीयमान होने पर भी वस्तु के अपने निजी सौन्दर्य के कारण आस्वाद्य (रसनीय) यानि आस्वाद का विषय बन जाने के कारण अन्य अनुमीयमान अर्थों से विलक्षण स्थायीभाव के रूप में सम्भाव्यमान 'रति' आदि भाव वहाँ अर्थात् 'नट' में वस्तुतः विद्यमान न रहने पर भी सामाजिकों के अपने संस्कार के कारण (स्वात्मगत होकर) आस्वाद्यमान (चर्व्यमाण) होता है, यानी नट में अनुमीयमान रति को ही सामाजिक स्वात्मगत समझकर उसका आस्वाद लेते हैं। अतः स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक स्वात्मगत समझकर उसका आस्वाद लेते हैं। अतः स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक के द्वारा उपर्युक्त प्रक्रिया के बल पर आस्वाद्यमान स्थायीभाव ही रस कहलाता है। यही श्रीशंकुक का मत है।

वस्तुतः श्रीशंकुक अनुमितिवादी आचार्य है। इनका मत न्यायसिद्धान्त का अनुसरण करता है। इनके मत में भरतसूत्र के 'संगोगात्' का अर्थ 'अनुमाप्य-अनुमापकभाव' सम्बन्ध और 'निष्पत्ति' का अर्थ 'अनुमिति' है। इस प्रकार इनके मतानुसार रस 'अनुमेय' है, विभावादि रसानुमिति के साधन है, सहृदय (रसिक) अनुमितिकर्ता है, रत्यादि स्थायीभाव राम में विद्यमान रहता है। वही विभावादि के द्वारा अनुमित होकर 'रस' कहलाता है। भाव यह कि रस मुख्य रूप से राम में रहता है और सहृदय नट में उसका अनुमान कर लेता है और वासना के कारण उसका आस्वादन (चर्वणा) करता है। इस प्रकार विभाव, अनुभाव और व्यभिचारीभाव के द्वारा अनुमाप्य-अनुमापकभाव सम्बन्ध से नट में रस की अनुमिति होती है। इसीलिए इस मत को 'रसानुमितिवाद' कहते हैं। इस प्रकार शंकुक का मत भट्टलोल्लट के मत पर

आधारित प्रतीत होता है। अन्तर केवल इतना ही है कि लोल्लट के मत में सहृदय नट में रामादि का आरोप करता है जबकि शंकुक के मत में वह अनुमान करता है।

श्री शंकुक ने उक्त अनुमान को लौकिक अनुमान को विलक्षण माना है । उनके मत में लोक में चार प्रकार के ज्ञान प्रसिद्ध हैं-

(१) सम्यक् ज्ञान

(२) मिथ्या ज्ञान

(३) संशय ज्ञान

(४) सादृश्य ज्ञान

श्री शंकुक के अनुसार 'रामोऽयम्' इस ज्ञान के बाद 'न रामोऽम्' इस प्रकार का ज्ञान होना मिथ्याज्ञान है। इसी प्रकार 'रामः स्याद्वा न वाऽयमिति' (यह राम है अथवा नहीं ?) इस प्रकार का ज्ञान सशंयज्ञान है, 'रामसदृशोऽयम्' (यह राम के समान है) इस प्रकार का ज्ञान सदृशज्ञान है।

चित्रतुरगादिन्याय-जिस प्रकार 'चित्रस्थ घोड़े' को देखकर लोग 'यह घोड़ा है' इस प्रकार व्यवहार करते हैं, किन्तु यह ज्ञान न सम्यक् ज्ञान है, न मिथ्याज्ञान है, न संशयज्ञान है और न सादृश्यज्ञान है बल्कि यह चित्रस्थ तुरग में होने वाला ज्ञान उक्त चारों प्रकार के ज्ञानों से विलक्षण है, भिन्न है। इसी प्रकार नट में राम की प्रतीति उक्त चारों प्रकार की प्रतीतियों से विलक्षण है, भिन्न है। इसे हम अनुकृतिजन्य ज्ञान या अनुकृत प्रत्यय कह सकते हैं, क्योंकि यह अनुकृत प्रत्यय उपर्युक्त चारों प्रत्ययों (प्रतीतियों) से विलक्षण है। यह अनुकृति अनुमिति का पूर्व योग हैं। यह अनुकृति रत्यादिभाव प्रतीति का कारण है। इसी अनुकृति रूप साधन से भावानुमिति निष्पन्न होती है, 'कारण, कार्य और सहकारी भाव उसी स्थिति में विभाव, अनुभाव और संचारीभाव कहलाते हैं जब वे अनुकृत होकर काव्य में आते हैं'।

इस प्रकार श्रीशंकुक के अनुसार विभावादि काव्य में अनुकृत होते हैं और भाव अनुमित होने के साथ-साथ अनुकृत भी होता है और तभी अनुकृत विभावादि के माध्यम से अनुकृत अनुमित भाव (स्थायी) रस कहलाता है। इसीलिए अभिनवभारतीकार कहते हैं कि कारणरूप विभाव, कार्यरूप अनुभाव तथा सहकारी रूप व्यभिचारी भावों के द्वारा नट के शिक्षा और अभ्यासादि रूप प्रयत्न से उत्पन्न

होने के कारण कृत्रिम होने पर भी कृत्रिम न प्रतीत होने वाले कारण, कार्य, सहकारी रूप विभावादि के द्वारा अनुकर्ता नट में स्थित लिंग के द्वारा अनुमान से प्रतीत होने वाला अनुकार्य राम में विद्यमान स्थायीभाव का यह अनुकरण रूप होता है और अनुकरण रूप होने के कारण ही यह स्थायीभाव उससे भिन्न नाम से व्यवहृत होने वाला पदार्थ 'रस' कहलाता है।

काव्यप्रकाश में श्रीशंकुक के मत का विवेचन करते हुए काव्यप्रकाशकार कहते हैं कि रसानुमिति में विभावादि की प्रतीति 'चित्रतुरगन्याय' से होती है अर्थात् रामादि के अनुकारक नट में कटाक्षादि अनुभावों के यथार्थ न होने पर भी नट शिक्षा और अभ्यास के बल से कृत्रिम कटाक्षादि का प्रदर्शन करता है। इस प्रकार कृत्रिम रामादि रूप नट के द्वारा कृत्रिम कटाक्षादि अनुभावों के प्रकाशन से अनुमान के द्वारा रस की अनुभूति होती है। भाव यह कि कृत्रिम रामादिगत रति (रस) का सामाजिक (सहृदय) अनुमान के द्वारा अनुभव करता है । यद्यपि विभावादि सभी उपकरण कृत्रिम हैं किन्तु सहृदय उन्हें कृत्रिम न मानता हुआ काव्य में विभावादि नाम से व्यवहृत करता है।

रस-चर्वणा- अब प्रश्न यह उठता है कि सामाजिक (सहृदय) इस अनुमीयमान रस का आस्वादन कैसे करता है? श्रीशंकुक का कहना है कि यद्यपि अनुमीयमान रस न कृत्रिम रामादि रूप नट में रहता है और न सहृदय (सामाजिक) में रहता है किन्तु वासना के बल से, वस्तु-सौन्दर्य के बल से सहृदय दोनों (नट और सहृदय) में अविद्यमान किन्तु अनुमीयमान रस का आस्वादन करता है। वस्तुतः अनुकृत भावरूप वस्तु में एक विलक्षण सोन्दर्य होता है, वहाँ प्रबल वस्तु-सोन्दर्य सहृदय में एक विलक्षण आवेग उत्पन्न कर देता है जिसे सामाजिक की रसानुभूति कही जा सकती है। इस प्रकार यह अनुमीयमान रत्यादिभाव कलात्मक सौन्दर्य युक्त वस्तु होने से अन्य अनुमीयमान विषयों से विलक्षण होता है। इसीलिए सामाजिक वासना के बल से उसका आस्वादन करता और वही वासना से चर्व्यमाण रस कहलाता है। (सामाजिकानां वासनया चर्व्यमाणो रसः इति श्रीशंकुकः)।

उपयुक्त कथन का तात्पर्य यह है कि श्रीशंकुक के अनुसार रसबोध में अनुकृति एक आवश्यक तत्त्व है और सहृदय का रसबोध अनुमित अर्थ है तथा अनुमान का आधार नट है जिसमें स्थायीभाव रूप रस अनुकृत है। नट अनुकारक है। सहृदय नट में अनुमान करके वस्तु-सौन्दर्यं के बल से रसबोध प्राप्त

करता है। इस प्रकार नट द्वारा अनुकृत और सहृदय द्वारा अनुमित स्थायीभाव रस है, यह श्रीशंकुक का अभिप्राय है।

समीक्षा- श्रीशंकुक के उक्त मत में भट्टतौत आदि आचार्यों ने आपत्तियाँ प्रस्तुत की हैं। श्रीशंकुक के मत में सहृदय और नट में जो विभावादि हैं वे सब कृत्रिम हैं और कृत्रिम विभावादि के आधार पर रसानुभूति नहीं हो सकती क्योंकि उन्होंने रसानुभूति का आधार अनुमान माना है। अनुमान से होने वाला ज्ञान परोक्ष होता है, प्रत्यक्ष नहीं। वस्तुतः प्रत्यक्ष ज्ञान से जो चमत्कारपूर्ण रसानुभूति होती है वह अनुमान के द्वारा नहीं हो सकती, क्योंकि अन्य में विद्यमान आनन्द का अनुमान अन्य में कदापि नहीं हो सकता। दूसरे इस अनुमान में सब कुछ कृत्रिम ही कृत्रिम है। अतः कृत्रिम साधन से अनुमान संभव नहीं है।

श्रीशंकुक का अनुकरण-सिद्धान्त दर्शक तथा सहृदय की दृष्टि से आदरणीय नहीं है। अनुकरण सादृश्य-प्रतीति पर आधारित है। अनुकार्य रामादि तथा अनुकर्ता नट को देखने पर ही अनुकरण की प्रतीति होती है। किन्तु अनुकार्य के रत्यादिभाव दर्शकों में किसी के द्वारा भी प्रत्यक्ष नहीं होता, अतः नट द्वारा रत्यादि भाव का अनुकरण तथा अनुक्रियमाण रत्यादि का रसरूप में अनुमान कैसे संभव है? क्योंकि प्रत्यक्षीकरण के अभाव में अनुकार्य (रामादि) का अनुकरण संभव न होने से रसरूप में अनुक्रियमाण में रत्यादि को रस का अनुमाप्य कैसे माना जा सकता है?

दूसरे नाट्यशास्त्र कहीं भी इस अनुकरण-सिद्धान्त का कोई संकेत नहीं मिलता, अतः भरतमुनि के द्वारा यह अभिमत भी नहीं है। इस प्रकार उनका अनुकरण सिद्धान्त मान्य नहीं है।

श्रीशंकुक का चित्रतुरगन्याय का सिद्धान्त भी ठीक नहीं है क्योंकि चित्रतुरगन्याय सादृश्यविधान की देन है। सिन्दूरादि के द्वारा तूलिका से रञ्जित गो में वास्तविक गाय की अभिव्यक्ति नहीं होती केवल गोसदृश अंगों की रचना स्पष्ट होती है और इसीलिए चित्रस्थ गो में गो सादृश्य की प्रतीति होती है किन्तु नट में वैसा सादृश्य विधान नहीं है, और विभावादि में भाव का कोई आकृत्यात्मक अनुकरण नहीं होता, अतः यह सिद्धान्त भी मान्य नहीं है।